भ्रमित सोच का एक उदाहरण

संदर्भः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 का मसौदा

रोहित धनकर

अनुवाद : जनित जैन

यह लेख दिखाता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के मसौदे में स्वयं उन क्षमताओं की कमी है जिन पर यह जोर देता है; जैसे आलोचनात्मक चिंतन व गहन समझ। यह एक खराब तरह से लिखा हुआ दस्तावेज है जो कि 'कौशल' की एक व्यापक व प्रधान अवधारणा के अंतर्गत जुटाई गई आधी समझी हुई शब्दावली के जंजाल के पीछे छुपने की कोशिश करता है।*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के मसौदे में लगभग 50 पृष्ठ पाठ्यचर्या व शिक्षणशास्त्र को समर्पित हैं। इससे किसी भी ऐसे शिक्षक को हार्दिक खुशी होगी जो देश में शिक्षाक्रम व शिक्षणशास्त्र के सिद्धांतों की गुणवत्ता हेतु चिंता महसूस करता है। मगर अफसोस, यहां मात्रा का गुणवत्ता से कोई संबंध नहीं है।

पाठ्यचर्या संबंधी निर्णयों हेतु किसी भी तरह के सुसंगत व मूल्यवान सुझाव एक सैद्धांतिक ढ़ाचे की मांग करते हैं जो वांछित समाज और शिक्षा के सामान्य लक्ष्यों को परिभाषित करता हो। इस तरह के किसी भी ढांचे की गैरमौजूदगी में तथाकथित व्यावहारिक ज्ञान सिर्फ कुछ अनियंत्रित और निराधार विचारों को जन्म देता है जो एक-दूसरे का कंधा छीलते नजर आते हैं। ठीक यही हुआ है राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के मसौदे की पाठ्यचर्या संबंधी अनुशंसाओं के साथ।

हालांकि यह कुछ अच्छे सुझाव भी देता है, जैसे माध्यमिक स्तर पर लचीलापन और एक व्यापक दायरा, नैतिक चिंतन के लिए जगह, तृभाषी फोर्मूले की मूलभावना पर पुनः बल देना, विभिन्न विषयों में मूल अवधारणाओं और मुख्य विचारों पर ध्यान, रटंत पद्धति से बचना, व्यावसायिक कोर्स, आकलन में समझने पर जोर। लेकिन उच्च-प्राथमिक स्तर पर बहुत सारे विषय/कोर्स शामिल कर दिए गए हैं, प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा के स्तर पर तीन भाषाएं प्रस्तावित हैं, और यह भ्रमित करने वाले वक्तव्यों के जंजाल से भरा हुआ है। इससे यह एक लम्बी-चौड़ी सूची बन गई है जो उच्च-प्राथमिक स्तर पर कई सारे विषय, मुद्दों और कौशलों से भरी हुई है। यह दृष्टि, विषयवस्तु और शिक्षणशास्त्र के बारे में एक खास तरह की सोच का परिणाम नजर आती है। इस सोच ने पाठ्यचर्या व शिक्षणशास्त्र संबंधी विमर्श में लापरवाहपूर्ण ढंग से इस्तेमाल की गई शब्दावली के साथ मिलकर मामले को और बिगाड़ दिया है।

भारत केंद्रित दृष्टि

दस्तावेज में शिक्षा के लिए अपनाई गई दृष्टि को कुछ इस तरह व्यक्त किया गया है, ''एक **भारत केंद्रित** शिक्षा व्यवस्था जो सभी को उच्च-गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करके प्रत्यक्ष तौर पर हमारे राष्ट्र के एक **न्यायसंगत** और **जीवंत** ज्ञान समाज के रूप में **स्थाई** रूपांतरण में भूमिका निभाएगी।'' यहां यह जो 'प्रत्यक्ष

* यह लेख संपादित व कुछ छोटे रूप में 13 जुलाई, 2019 को द हिन्दू में प्रकाशित हो चुका है।

तौर पर' शब्द इस्तेमाल किया गया है, इससे शिक्षा से जुड़े हुए कुछ गहन पक्षों के संदर्भ में एक किस्म की जल्दबाजी और अधीरता दिखाई देती है जो शायद 'ज्ञान समाज' के बनने में 'प्रत्यक्ष तौर पर उपयोगी' नहीं हैं। शिक्षा में यह जो 'भारत-केंद्रितता' है, यह सिर्फ भारतीय भाषाओं के बारे में कुछ अनुशंसाओं और भारतीय ज्ञान व्यवस्थाओं तक सीमित है। व्यावहारिक परिकल्पना, दरअसल, 'ज्ञान समाज' की है जो कि लगभग पूरी की पूरी यूनेस्को द्वारा प्रचारित 21वीं शताब्दी के कौशलों में मौजूद है। लोकतांत्रिक आदर्श का कोई उल्लेख या इस्तेमाल ना तो पाठ्यचर्या संबंधी अनुशंसाओं में दिखाई देता है और ना ही शिक्षा के लक्ष्यों को निरूपित करते वक्त। हालांकि, लोकतांत्रिक मूल्यों को विषयों से जुड़े हुए मुख्य कौशलों में शामिल किया गया है। वास्तव में, नीति में 21वीं शताब्दी के कौशलों के अलावा शिक्षा के लक्ष्यों जैसी कोई अवधारणा दिखाई ही नहीं देती।

उपरोक्त अनुच्छेद में मैंने जो कहा है उसके खिलाफ एक संभव तर्क यह हो सकता है कि यूनेस्को दस्तावेजों में ज्ञान समाज को जिस तरह परिभाषित किया गया है, उसमें विचारों की स्वतंत्रता व अन्य मानवीय मूल्यों पर जोर दिया गया है, इसलिए यह शिक्षा में लोकतांत्रिक आदर्शों का खयाल रखता है। लेकिन ज्ञान समाज का विचार भी सिर्फ डिजिटल कनेक्टिविटी और आर्थिक विकास की ही बात करता है। यह सोचने की बात है कि लोकतांत्रिक अधिकार और मूल्य अकेले डिजिटल कनेक्टिविटी और आर्थिक विकास से सुरक्षित रखे जा सकते हैं या फिर मामला उलटा है कि लोकतांत्रिक मूल्यों और स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्धता और बेहतर समझ समतापूर्ण विकास और कनेक्टिविटी को सभी के लिए सुगम और सार्थक बनाता है।

इस संदर्भ में मंत्री जी का संदेश बहुत कुछ बयां करता है : जनसांख्यकीय ढांचे की बेहतरी के लिए हमारी सरकार का यह वायदा था कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, नवाचार व शोध के संदर्भ में जन की बदलती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करेगी ताकि भारत के छात्रों को जरूरी ज्ञान और कौशल प्रदान करके भारत को एक ज्ञान महा-शक्ति बनाने के लक्ष्य तक पहुंचा जा सके। मंत्री के संदेश में 'ज्ञान' के मायने, जाहिर है, कौशलों का ज्ञान हैं। यहा अध्यक्षीय प्रस्तावना कुछ अधिक संतुलित प्रतीत होती है क्योंकि, यह कम से कम 'विभिन्न बढ़ते हुए विकास कार्यों' में योगदान देने के पीछे एक 'न्यायपूर्ण व समता आधारित समाज' का जिक्र करती है। जनसांख्यकीय लाभांश के माध्यम से आर्थिक विकास को तो केंद्र में रखा गया है जबकि लोकतांत्रिक दृष्टि सिर्फ़ कहीं-कहीं दिखावटी तौर पर ही नजर आती है, जैसे 'कौशलों' की सूची में। इसका सिर्फ 'जिक्र' किया गया है, इसे नीति का आधार नहीं बनाया गया है और न ही पाठ्यचर्या में यहां से कुछ बहुत महत्वपूर्ण शामिल किया गया है।

एक और जगह जहां लोकतांत्रिक आदर्शों का जिक्र किया गया है वह है, वित्त संबंधी पृष्ठ। जहां शिक्षा में वित्तीय आवंटन को बढ़ाने हेतु ''सबसे अच्छा निवेश'' का मुहावरा इस्तेमाल किया गया है जो कि सही भी है वहीं लोकतांत्रिक आदर्शों का भी जिक्र किया गया है, ''ऐसा करते वक्त यह विचार भी नहीं किया गया है कि शिक्षा से संबंधी कई सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य व लाभ ऐसे हैं जिन्हें आर्थिक परिप्रेक्ष्य में कतई नहीं देखा जा सकता। उदाहरण के लिए, एक मजबूत लोकतंत्र, समतामूलक समाज व सांस्कृतिक जीवंतता। समस्या यह है कि दृष्टिपत्र का मूल स्रोत कहीं और है। पाठ्यचर्या के उद्देश्य व अनुशंसाओं का मूल ज्ञान समाज व 21वीं सदी के कौशलों में है, लोकतांत्रिक आदर्श तो सिर्फ साथ में लटक कर चले आए हैं।

पूछा जा सकता है : इसमें गलत क्या है? मुद्दा यह है कि आप किस चीज पर जोर देते हैं। शिक्षा का मुख्य मुद्दा नैतिक विकास होना चाहिए। इसे, आज की दुनिया में इस तरह व्यक्त किया जाता है : एक आलोचनावादी व चिंतनशील नागरिक जो न्याय, समानता, स्वतंत्रता व गरिमा के लोकतांत्रिक आदर्शों को थामकर चले। सभी समाजों में एक मजबूत अर्थव्यवस्था की भी दरकार होती है; आर्थिक लक्ष्य आवश्यक तौर पर शैक्षिक ढांचे व पाठ्यचर्या का ही एक हिस्सा होते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि आर्थिक काबिलियतें लोकतांत्रिक आदर्शों के लिए आवश्यक 'संसाधन' होती हैं न कि इसके उलट। जिन चीजों से पाठ्यचर्या का निर्माण होता है वह हैं, इस तरह के व्यक्ति के निर्माण हेतु आवश्यक बौद्धिक विशेषताएं, ज्ञान व कौशल। यदि 21वीं सदी के कौशलों को केंद्र में रखा जाएगा तो नैतिक पक्ष

सिर्फ ज्ञान समाज के निर्माण हेतु आवश्यक कुछ 'मुट्ठी भर कौशल' के रूप में आएगा ना कि समाज, राज्यव्यवस्था और अर्थव्यवस्था को संगठित करने के निर्देशक सिद्धांत के तौर पर। इसका परिणाम यह होगा कि एक विकृत पाठ्यचर्या सामने आएगी जो आर्थिक रूप से उपयोगितावादी 'कौशलों', जो कि अपने-आप में स्वयं-सिद्ध हों, के पक्ष में झुकी होगी, जहां सामाजिक राजनैतिक जीवन को नजरअंदाज कर दिया जाएगा। प्रस्तुत पूरे दस्तावेज में यह काफी स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है।

पाठ्यचर्या के उद्देश्य

ज्ञान समाज की परिकल्पना सीधे तौर पर 'पाठ्यचर्या व शिक्षणशास्त्र' से संबंधित अध्याय के लिए उल्लिखित उद्देश्यों की तरफ ले जाती हैः ''पाठ्यचर्या व शिक्षणशास्त्र के स्वरूप को 2022 तक इस तरह से रूपांतरित किया जाएगा कि रटन्त आधारित अधिगम को कम से कम किया जा सके व इसकी जगह सर्वांगीण विकास व 21वीं सदी के कौशलों, जैसे आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता, वैज्ञानिक चिंतन, संप्रेषण, सहभागिता, बहुभाषिता, समस्या समाधान, नैतिकता, सामाजिक जिम्मेदारी व डिजिटल लिटरेसी को प्रोत्साहित किया जा सके।'' यहां सबसे महत्वपूर्ण व सार्थक शब्द 'कौशल' है और प्रत्येक चीज को इसी के अंतर्गत फिट होना है; नैतिकता व सामाजिक जिम्मेदारी को भी! नीति के प्रस्तुत मसौदे के अनुसार'' जो लक्ष्य होगा वह है, ऐसे समग्र व पूर्ण व्यक्तियों का निर्माण करना जो 21वीं सदी के कौशलों से युक्त हों। इससे 'समग्र व पूर्ण वयक्तियों' की परिभाषा काफी स्पष्ट हो जाती है।

कुछ एक सुझाव जिनमें नए विषयों/कोर्स आदि को शामिल किया गया है, के बाद एक और वक्तव्य दिखाई देता है जो ''अनिवार्य विषयों व कौशलों का पाठ्यचर्या में समायोजन'' शीर्षक के अंतर्गत आता है व पाठ्यचर्या के उद्देश्य या शिक्षा के लक्ष्यों जैसा दिखाई देता है। यहां शुरुआती वक्तव्य व विषय/कौशलों की सूची को ठीक से समझा जाना उपयोगी होगा। यह कहता हैः''... यह नीति कल्पना करती है कि **कुछ खास विषय व कौशल सभी छात्रों द्वारा सीखे जाने चाहिए ताकि वे तेजी से बदलती दुनिया में एक अच्छे, सफल, नवाचारी, अनुकूलनीय व उत्पादक इंसान बन सकें।** भाषाओं में दक्षता के अलावा इन **कौशलों** में शामिल हैंः वैज्ञानिक चिंतन; **कला व सौंदर्य बोध**; भाषाएं; संप्रेषण; **नैतिक चिंतन**; डिजिटल लिटरेसी; **भारत की समझ; व स्थानीय समुदायों, राज्यों, देश व दुनिया के सामने आने वाले महत्वपूर्ण मुद्दे**।'' (जोर दिया गया है)। मोटे तौर पर लक्ष्य है **''अच्छे, सफल, नवाचारी, अनुकूलनीय, व उत्पादक इंसान।''** यह एक ऐसा नागरिक नहीं है जो स्वयं ये सोचना चाहे कि 'अनुकूलन' स्थापित करना है या 'चुनौती' देना है; बल्कि, इसे जो उपलब्ध है उसके साथ तालमेल बिठाना है व सफल होना है। तब सभी 'मानवीय काबिलियत व चारित्रिक विशेषताओं' का तात्पर्य होता है, इस अनुकूलन और सफलता के लिए आवश्यक 'कौशलों' का होना। यह याद रखना चाहिए कि **मूल्य हमारा मार्गदर्शन करने के लिए होते हैं** कि क्या करना लाजमी है व **कौशल वे औजार हैं** जिनकी मदद से हम अपने तय किए हुए कार्य को बेहतर ढंग से कर सकें। जब मूल्य ही कौशल बन जाएं तब यह सवाल कि क्या करना लाजमी है, का जवाब पहले ही प्राप्त हो जाता हैः दी गई व्यवस्था में सफलता हासिल करना। एक मनुष्य के तौर पर मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता का निर्णयात्मक महत्व होना व सफलता के लिए 'मूल्यों का एक टूल किट' की तरह होना, दो बिलकुल अलग-अलग चीजें हैं।

आठ कौशलों की दी गई सूची से यह अपेक्षित है कि इस तरह के सफल व अनुकूलनीय व्यक्तियों का 'निर्माण' हो। शब्दावली का जिस तरह इस्तेमाल किया गया है वह हर तर्क से परे है। केवल इतना ही नहीं 'सौंदर्य बोध' व 'नैतिक चिंतन' को कौशल समझ लिया गया है; 'प्रमाण आधारित व वैज्ञानिक चिंतन' को हर जगह साथ-साथ इस्तेमाल किया गया है, यानी ऐसा भी कोई 'वैज्ञानिक चिंतन' हो सकता है जो 'प्रमाण आधारित' ना हो। या फिर हो सकता है कि यह इसलिए हो कि आजकल 'प्रमाण आधारित' शब्दावली काफी प्रचलन में है जहां 'वैज्ञानिक चिंतन' सही मायने में क्या है इसे समझा ही नहीं गया है। अस्पष्ट मान्यताएं निश्चयात्मक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं, एक उदाहरण देखिएः ''प्रमाण आधारित व वैज्ञानिक चिंतन पूरी पाठ्यचर्या के दौरान स्वाभाविक रूप से ऐसे विवेकशील, नैतिक व संवेदनशील व्यक्तियों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगी जो कि अपने जीवन के दौरान अच्छे, तार्किक व सही निर्णय ले पाएंगे।''

शब्द 'विवेकशील' 'वैज्ञानिक चिंतन' से ज्यादा विस्तृत है क्योंकि सोचने के विवेकपूर्ण तरीके सिर्फ 'वैज्ञानिक' के परे भी जाते हैं, जैसे नैतिक व सौंदर्यपरक निर्णय। इसलिए, वैज्ञानिक चिंतन नहीं बल्कि विवेकशील चिंतन ही नैतिक चिंतन के **बौद्धिक पहलू** की गारंटी है। लेकिन 'नैतिक व्यक्ति' की **मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता** भी होती है जिसके लिए केवल विवेकशील चिंतन या वैज्ञानिक चिंतन के अलावा कुछ और भी आवश्यक है। वैज्ञानिक चिंतन अकेले किस तरह 'संवेदनशीलता' को विकसित करेगा, यह समझ से परे है। इसके अलावा, समस्या समाधान व तार्किक चिंतन इन सर्वथा महत्वपूर्ण कौशलों की सूची में अलग शीर्षक के तौर पर रखे गए हैं, इसका तात्पर्य है कि ये ना तो वैज्ञानिक चिंतन का हिस्सा हैं और ना ही विवेकशील चिंतन का। बड़े कमाल की बात है कि 'प्रमाण आधारित व वैज्ञानिक चिंतन' से नैतिक, विवेकशील व **'संवेदनशील'** व्यक्ति के विकास की उम्मीद की जा रही है लेकिन **'तार्किक व समस्या समाधान करने वाले व्यक्ति'** की नहीं। ये सोचने वाली बात है कि तार्किक व समस्या समाधान की काबिलियतों का कौनसा हिस्सा ऐसा है जो प्रमाण आधारित, वैज्ञानिक व विवेकशील चिंतन के दायरे के बाहर आता है। यह सब दरअसल इसलिए है क्योंकि, कौशलों को स्वयं-सिद्ध सत्य या बुनियादी सूत्र मान लिया गया है। इसलिए इस तरह की प्रचलित शब्दावली से जितनी लम्बी संभव हो उतनी लम्बी सूची बनाने की इच्छा नजर आती है। लेकिन इनका सही अर्थ क्या है और ये, वास्तव में, एक-दूसरे से व मानवीय सामर्थ्य से किस तरह जुड़ी हुई हैं, यह समझना काफी पेचीदा प्रतीत होता है।

इस लेख में अब तक की गई चर्चा लोगों को बाल की खाल निकालने जैसी लग सकती है। लेकिन, एक नीतिगत दस्तावेज कई स्तरों पर पढ़ा और समझा जाता है तथा यह शैक्षिक विमर्श को प्रभावित करता है। एक दस्तावेज जो स्पष्ट समझ व विवेचनात्मक चिंतन पर इतना जोर देता है, स्वयं इन मानदंडों पर खरा ना उतरे, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। राष्ट्रीय स्तर पर एक बनावटी सोच किसी को भी नीति की सही व्याख्या व क्रियान्वयन के प्रति सजग रहने हेतु बाध्य करती है। यह कई नीतिगत अनुशंसाओं में पहले से ही दिखाई देता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं।

नीति का प्रस्तुत मसौदा इस संबंध में काफी भ्रमित स्थिति में दिखाई देता है कि आधारभूत पड़ाव किसे कहा जाए। यह निजी प्री-स्कूल की यह कहकर सही ही आलोचना करता है कि ये प्राथमिक विद्यालयों का ही एक किस्म का अधोगामी विस्तार हैं और उनमें औपचारिक शिक्षण की भी। लेकिन इसके बाद 3-6 वर्ष के बच्चों के लिए तीन भाषाओं में पढ़ने व वर्णमाला सीखने की बात करता है। यह छोटे बच्चों की भाषा सीखने की उन्नत सामर्थ्य के नाम पर किया गया है। नीति 'भाषा अर्जन जब बच्चे एक से अधिक भाषाओं में संलग्न हैं' को 'भाषा शिक्षण की परिस्थितियां' समझ लेती है जहां तीन भाषाओं में एक साथ संलग्न होना असंभव है; और फिर इसे पूरी तरह से अनुचित तरीके से तीन लिपी सीखने तक ले जाती है। यह अफसोस जताती है कि प्री-स्कूल प्राथमिक विद्यालयों के ही अधोगामी विस्तार की तरह काम कर रहे हैं और फिर बच्चों को वर्णमाला सिखाकर प्राथमिक स्कूल के लिए तैयार करने का सुझाव देती है, यह भूलकर कि इसी को वास्तव में प्राथमिक स्कूलों का अधोगामी विस्तार कहते हैं। यह 3 वर्ष की उम्र से पढ़ने और लिपी सिखाने की बात करती है, लेकिन 6 वर्ष की उम्र से लिखना और 'कुछ पाठ्यपुस्तकें' 8 वर्ष की उम्र से शुरू करना चाहती है। आखरि इनके लिए पाठ्यपुस्तक के मायने क्या हैं? और ये किस तरह से पढ़ना और लिपी सिखाने की बात कर रहे हैं जबकि कोई लिखित/छपी सामग्री नहीं है? पाठ्यपुस्तकों को लागू करने में 2 वर्ष का इंतजार क्यों किया जा रहा है जबकि बच्चों को पढ़ना और लिखना 6 वर्ष की उम्र तक सिखा दिया जाना है? क्या सीखना तब आसान होता है जब लिखना भी साथ में ही शुरू कर दिया जाए या फिर यह बेहतर है कि पहले 3 वर्ष तक पढ़ना सिखाया जाए और फिर लिखने की बात की जाए?

अच्छा है कि मसौदे में यह प्रतिबद्धता जाहिर की गई है कि ''अनिवार्य विषयवस्तु को पाठ्यक्रम के प्रत्येक शिक्षण क्षेत्र में कम किया जाएगा ताकि मुख्य अवधारणाओं और जरूरी विचारों पर ध्यान केंद्रित किया जा सके।'' ताकि ''चर्चा, गहन समझ, विश्लेषण व मुख्य अवधारणाओं के अनुप्रयोग हेतु ज्यादा जगह हासिल'' हो सके। यह एक बहुत अच्छा सुझाव है। लेकिन फिर यहां से जो जगह हासिल हुई है उससे भी ज्यादा जगह, पहले से मौजूद आठ विषयों के अतिरिक्त छह नए विषयों/कोर्स शुरू करके घेर ली गई है। कुछ नए विषय जैसे (जिसे उच्च-प्राथमिक स्तर पर 'कोर्सेज' कहा

जा रहा है, बिना यह स्पष्ट किए कि कोर्स और विषय में इस स्तर पर क्या फर्क है।) 'विवेचनात्मक मुद्दे' व 'नैतिक चिंतन' को सामाजिक अध्ययन की संशोधित परिभाषा के अंतर्गत ज्यादा बेहतर तरीके से सिखाया जा सकता है, क्योंकि दोनों का ही संदर्भ समाज से आता है। लेकिन नीति उन्हें अलग विषयों की तरह रखना चाहती है। स्थिति जो भी हो, पर सामाजिक अध्ययन को उच्च-प्राथमिक के पाठ्यक्रम में अधिक जगह देने की जरूरत है। इनका शिक्षण इस तरह करना कि समाज के साथ इन्हें जोड़कर देखा जा सके, विवेचनात्मक मुद्दों व नैतिक चिंतन को प्रस्तुत करने का एक बहुत बेहतर तरीका हो सकता है। नैतिक चिंतन को अलग-थलग सिखाने का वही हाल होगा जो कई स्कूलों में तथाकथित नैतिक शिक्षा का हुआ। इसी तरह भारतीय शास्त्रीय भाषा व भारतीय भाषाओं को मिलाकर एक समृद्ध विषय बनाया जा सकता है। मुख्य अवधारणाओं व महत्वपूर्ण विचारों को पहचानना पाठ्यक्रम संबंधी निर्णयों की एक सिद्धांतों पर आधारित व विवेकशील प्रक्रिया है, ऐसा नहीं है कि जो भी विचार दिमाग में आते जाएं उन्हें उतार लिया जाए।

सामाजिक-राजनीतिक जीवन की गैर-मौजूदगी

सामाजिक-राजनीतिक जीवन की अनुपस्थिति भी ज्ञान समाज व 21वीं सदी के कौशलों पर जोर देने का एक और नतीजा दिखाई देती है। वास्तव में, ऐसा लगता है कि समिति के दिमाग में सामाजिक अध्ययन कहीं मौजूद ही नहीं था, क्योंकि इसका एक बार जिक्र किया गया और फिर पूरी पाठ्यचर्या संबंधी चर्चा में इसे छोड़ दिया गया। उच्च-प्राथमिक स्तर पर यही वह क्षेत्र है जहां पाठ्यक्रम में लोकतांत्रिक मूल्यों को सबसे उपयुक्त तरीके से रखा जा सकता है। लेकिन नीति की सोच भारतीय संविधान और इस देश में लोकतंत्र के विकास की बजाय यूनेस्को की घोषणाओं और रेपोर्टों पर टिकी हुई है; जबकि वे शिक्षा को भारत केंद्रित बनाना चाहते हैं।

इससे यह साफ दिखाई देता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के मसौदे में स्वयं उन क्षमताओं की कमी है जिन पर यह जोर देता है; जैसे आलोचनात्मक चिंतन व गहन समझ। यह एक खराब तरह से लिखा हुआ दस्तावेज है जो कि 'कौशल' की एक व्यापक व प्रधान अवधारणा के अंतर्गत जुटाई गई आधी समझी हुई शब्दावली के जंजाल के पीछे छुपने की कोशिश करता है। लेकिन इस सबके वाबजूद यह जरूर कह देना चाहिए कि पाठ्यचर्या के मामले में यह जरूर कुछ अच्छे सुझाव पेश करता है, चाहे वे खुद में भी आधे-अधूरे ही हों। ◆

लेखक परिचय : अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं अकादमिक विकास के निदेशक हैं और दिगन्तर, जयपुर के संस्थापक सदस्य व सचिव हैं।

संपर्क : rohit.dhankar@apu.edu.in